32

जगदीश चन्द्र के उपन्यासों में चित्रित दलितों की समस्याएँ

-डॉ. ए. सन्यासि राव
पोस्ट डॉक्टूल फेलो, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखपट्टणम **-3**

दलित चेतना की अभिव्यंजना की दृष्टि से जगदीश चंद्र के उपन्यास विशिष्ट बन पडे हैं। 'धरती धन न अपना', 'जमीन अपनी तो थी' और 'नरककुंड में बास' में दलित कहे जानेवाले लोगों के जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं का यथार्थ अंकन पाया जाता है। **'धरती धन न अपना'** स्वाधीन भारतीय परिवेश में पंजाब के 'घोडेवाहा' गाँव के दलितों के जीवन को और उस गाँव के विभिन्न वर्गों के लोगों के सामाजिक संबंधों को केन्द्र बनाकर रचा गया है। 'काली' के माध्यम से दलितों की समस्याओं और तनावपूर्ण स्थितियों का यथार्थ अंकन किया गया है। 'काली' छः वर्ष पहले आर्थिक विपन्नता से आक्रांत परिवार से भागकर कानपुर पहुँच जाता है। छः साल बाद वह अपना गाँव लौट आता है और उस गाँव की सीमाओं में रहनेवाले दलितों की दुर्भर स्थितियों को देखकर विचलित हो जाता है। पूरे गाँव में परिवर्तन आता है, किंतु 'चमादरी' की स्थिति वैसी-की-वैसी बनी हुई है। लेखकीय व्यक्तित्व के प्रतिनिधि पात्र के रूप में 'काली' दलितों की स्थिति में सुधार लाने और शोषण का अंत करने की दिशा में सोचता है और उसके विचार समाज सापेक्ष एवं क्रांतिकारी सिद्ध होते हैं। जमीनदार और साहुकार की दुरभिसंधियों के शिकार बने गरीब हरिजनों के प्रति सहानुभूति रखकर 'काली' उनकी स्थिति में सुधार लाने के प्रयास करता है। चौधरी हरनामसिंह कालिदास को डाँटता है - "गाँव में रहना है तो भलमानसी से रहो। जिस थाली में खाते हो उसी में छेद करना चाहते हो।" वह चौधरियों को काली के खिलाफ उकसाता है - ".....जिस दिन से तू ने यहाँ कदम रखा है, रोज दंगा-फसाद होने लगा है।" काली में गाँव के जमीनदारों के शोषण के विरुद्ध विद्रोह-चेतना भडक उठती है। वह कहता है- ".....यह तो पहले भी होती थी लेकिन लोग चुपचाप सहन कर लेते थे। मैं उस समय चुप नहीं रह सकता जब पानी सिर से गुजरने लगता है।" चमारों के प्रति उस गाँव के सवर्ण कहे जानेवाले लोगों द्वारा प्रदर्शित घृणा का तीखा अहसास होने के कारण अशिक्षित गरीब हरिजनों को शोषण के विरुद्ध संगठित करने का 'काली' प्रयास करता है। बेरोजगारी और निर्धनता के कारण वह अपने विचारों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त नहीं कर पाता है। उपन्यासकार जगदीश चंद्र लिखते हैं- "लेकिन काली के सामने प्रश्न था कि वह काम क्या करे.....जमीन होती तो वह खेतों में हल चलाता, ढोर-डंगरों को चारा-पानी डालता, दुकान होती तो उसे खोलकर बैठ जाता।" इस उपन्यास में सामंतीय शोषण-चक्र एवं जातिगत तिरस्कार की भट्टी में जलते चमार समाज की व्यथा-कथा को प्रस्तुत किया गया है। मंगू, नंदसिंह, जीतू, नीकू, बंतू, तया, बसंता, बाबा फत्तू आदि पात्रों के माध्यम से चमार जाति के लोगों की समस्याओं का अंकन करने में उपन्यासकार जगदीश चंद्र सफल हुए हैं। जस्सो, ताई निहाली, चाची प्रतापी, प्रीतो, लच्छो आदि पात्रों के माध्यम से 'घोडेवाहा' गाँव की महिलाओं के जीवन में संघर्ष को कई रूपों में चित्रित किया गया है। लेखक ने घोडेवाहा के चमारों पर चौधरियों के आतंक और दहशत को बहुत ही करीब से देखा था। तभी तो ऐसा सजीव चित्रण साध्य हुआ है - "कोठों की दीवारों और दरवाजों के साथ मैली-कुचैली स्त्रियाँ भयभीत बच्चों को छातियों से लटकाये या अपनी टाँगों में दबाए हुए चौधरी और अपने

मुहल्ले के मर्दों को देख रही थी। बूढे और जवान सब ऐसे सिर झुकाए हुए थे जैसे राज के दरबार में खडे हों। उनके मैले ताँबे के रंग के शरीर मंद हवा में हिल रहे पत्तों की तरह काँप रहे थे। चौधरी हरनाथसिंह सबको गालियाँ दे रहा था लेकिन उनके मुँह पर ताले पडे थे।" इसी प्रकार चौधरी हरनाथसिंह मंगू के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग करते हैं, उसी से जमीनदारों की निर्दयता की झलक मिल जाती है - "कुत्ते की औलाद तूने घोडी को खुल्ला क्यों छोड दिया था, कोई ले जाता तो क्या तेरा बाप इतने रूपये भरता ?" इस प्रकार अस्पृश्यता, धर्मांतरण के बुरे परिणाम, असमानताओं को प्रश्रय देनेवाली व्यवस्था में प्रकट होनेवाली विसंगतियाँ, गरीबी, दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार, शारीरिक शोषण आदि तथ्यों को वस्तु के रूप में स्वीकार कर जगदीश चंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में 'दलित' कहे जानेवाले लोगों की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है।

'नरककुण्ड में बास' जगदीश चन्द्र का एक और दलित-चेतना-प्रधान उपन्यास है। 'नरककुण्ड में बास' में उपन्यासकार ने उन दलित बेकसूर मजदूरों की जिन्दगी से हमारा साक्षात्कार करवाया है जो अपनी मजबूरी या चौधरियों-जाटों के आतंक की वजह से गाँव छोडकर शहर रूपी नरककुण्ड में नारकीय जीवन जीने को लाचार हैं। शहर में नौकरी की तलाश में दर-बदर भटकना, फिर भी निराशा ही हाथ लगना, इस बेरोजगारी और मजबूरी का पूँजीपति वर्ग अधिकाधिक लाभ उठाना, उनके शोषण-चक्र में निरंतर बिना कुछ बोले अभाव और अनारोग्यपूर्ण वातावरण में जीवन बिताना जैसी अनेक समस्याओं का लेखक ने संवेदनशीलता के साथ चित्रण किया। इस उपन्यास के नायक का नाम भी 'काली' ही है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में दलितों की जीवन-शैली और उनकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण पाया जाता है। इस रचना में उपन्यासकार एक बिल्कुल अछूता कथ्य अपनाते हैं। रेढा चलाने मजदूरों तथा मुख्यत: पशुओं की कच्ची खाल को साफ करने का काम करनेवाले, चमडा कमानेवाले मजदूरों की जिंदगी की तकलीफों को उजागर करना इस उपन्यास का कथ्य है। दोनों ही रूपों में पशुवत् जिन्दगी को जी रहे, चमारों के टोले का अत्यंत सूक्ष्म, प्रामाणिक और गहरी संवेदनशीलता से चित्रण करता हुआ लेखक हिन्दी में कथ्यपरक नवीनता का समावेश करता है। 'काली' को रेढा खींचने का काम सौंपा जाता है। अपनी भूख को शांत करने के लिए, बहुत ही कष्टप्रद होने के बावजूद, 'काली' रेढा खींचने का काम करता रहता है। इस कारखाने में काम करनेवाले दलित, जानलेवा बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। एक तो यहाँ कोई काम करने के लिए तैयार नहीं होता, जो अपनी विवशता के कारण तैयार होता है, उसे जानलेवा बिमारी हो जाती है। किशना कहता है- "असल में यहाँ नया आदमी टिकता नहीं है। ..... काम बहुत गंदा और सख्त है।" कारखाने का वातावरण गंदगी से युक्त है। "चर्बी और कच्ची खालों से निकलती बदबू, मक्खियों के झुंड, पीने के लिए छप्पड का पानी और कच्ची खालों में चिपके गोश्त के टुकडों के कारण आस-पास मंडराते गिद्ध और कुत्ते।" ऐसा घिनौना काम मिलने पर भी वे अपने आपको बडभागी समझते हैं और काम दिलाने का एहसान मानते हैं- "यारा जरूरतमंद की मदद करने, भूखे को रोटी देने और बेआसरा को आसरा देना बहुत बडा पुण्य माना जाता है लेकिन बेकार को रोजगार देना या दिलाना सबसे बडा पुण्य है।" यही दलित मजदूरों के जीवन की विडंबना है। मंदिर के नाम पर लाखों का धन इकट्ठा किया जाता है। काली तथा अन्य चमडा कारखाने के मजदूरों को बिना पूछे ही उनकी तनख्वाह से रोज पाँच रूपया काट लिया जाता है। काली पहले से ही मजबूर, लाचार, बेबस एवं निरुपाय है। न तो उसका कोई साथी-संगी है, न घरबार, न रोजगार और न ही दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए कोई आर्थिक

निश्चिन्तता। काली का सच्चा साथी किशना अब काली का सहारा बन जाता है। रेढा खींचने का काम करते समय जब काली यह देखता है कि ईमानदारी से मेहनत मजदूरी करने पर भी लाला उनकी नीयत पर शक करता है, तो वह अपने मन के गुबार को कालू के समक्ष निकालता है- "लाला कैसी बातें कर रहा था। यहाँ तक सामान लाने में हमारी खुच्चें टूट गई हैं और शरीर का इंजर-पिंजर ढीला पड गया है लेकिन लाला को हमारी नीयत पर बराबर शक है।" माँझा, किशना, बंसा, नंजू चाचा, नायी आदि पात्रों के माध्यम से दलितों की असहाय अवस्था का चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने उपन्यास के पात्रों के माध्यम से रेढा खींचनेवाले दलितों के यंत्रणापूर्ण जीवन के एक-एक पहलू, उनके द्वारा पशुवत कार्य करना और पसीने में तर हो जाना, पशुओं की तरह पानी पीना, काम छूट जाने का भय, मुनीम को खुश करने के लिए उसे पान खिलाना, मुनीमों के द्वारा उन पर चोरी का संदेह करना, उनका शोषण, उनकी जानलेवा बीमारियाँ, आपसी प्रेम, एक-दूसरे की देखबाल, उनकी जीतोड मेहनत, रोज की दिहाडी रो ही ले लेना, मेहनत की मजदूरी लेने पर भी मुनीमों की जीहुजूरी करना आदि का व्यापक मानवीय संवेदना के साथ ऐसा सजीव चित्रण किया है मानो स्वयं लेखक ने उस जीवन को जीया हो।

'जमीन अपनी तो थी' में लेखक ने दलितों की बिभिन्न समस्याओं में खास तौर पर पढे-लिखे दलित अधिकारी वर्ग की स्वकेन्द्रिता एवं दायित्वहीनता की समस्या पर प्रकाश डाला है और आजादी के बाद दलितों के रहन-सहन, आचार-विचार, शिक्षा-व्यवसाय आदि में आ रहे बदलाव को भी यथावसर उकेरा है। 'जमीन अपनी तो थी' उपन्यास में दलितों की समस्याओं का अंकन हुआ है। जगदीश चन्द्र ने दलित-जीवन से जुडी जिन समस्याओं को इस उपन्यास में विन्यस्त किया है, उनमें दलितों की हिजरत, शारीरिक शोषण, उनके साथ किये जानेवाले अमानवीय व्यवहार, अस्पृश्यता, अपमान, शोषण, सवर्ण मानसिकता के साथ-साथ उनकी भीतरी कमजोरियों- अशिक्षा, अंधविश्वास, आपसी जाति-भेद, संगठन का अभाव, दलित उद्धारकों का छद्म, सरकारी तंत्र में फैले हुए भ्रष्टाचार आदि प्रमुख हैं।

शिक्षा के प्रसार के बावजूद, लोगों के मन में दलितों के प्रति घृणा की भावना कम नहीं हुई है। तथाकथित पढे-लिखे उच्च वर्ग के लोगों के मन में भी दलितों के प्रति कोई अच्छी भावना नहीं है। 'जमीन अपनी तो थी' उपन्यास में चमार जाति का कुलतारसिंह अफसर बन गया है। कुलतारसिंह के साथ काम करनेवाले क्लर्क तथा चपरासियों को कुलतारसिंह का ऊँचे पद पर आसीन होना अच्छा नहीं लगता है। कार्यालय में काम करनेवाला परमानंद कहता है- "आजादी ने क्या गुल खिलाए हैं। चमारों के पंडित-पठान बेगारी।" दलित नारी पर चौधरियों के अत्याचार के अनेक उदाहरण हैं। 'जमीन अपनी तो थी' में नंदसिंह के गाँव छोडकर अड्डे पर आने के कारण भी उसे चौधरियों का अत्याचार सहन करना पडता है। "कई चौधरी पराई औरत को जोर-जबरदस्ती से घर में बिठा लेते हैं। कोई उँगली नहीं उठाता, क्योंकि उसके पास गलत बात को सही बनाने के साधन होते हैं। ..... तू बता हमारा क्या कसूर था जो घर-गाँव छोडना पडा? ..... जुल्म भी हम पर हुआ और सजा भी हमें ही मिली।" इस उपन्यास में दलित संवेदना को उभारने के लिए लेखक ने महत्वपूर्ण प्रसंगों के माध्यम से सवर्णों के द्वारा दलितों के प्रति किये जानेवाले अमानवीय व्यवहार का चित्रण किया है। बात-बात पर दलितों को अपमानित और प्रताडित करना आम बात हो गई है। बलजीतो के लौट आने पर मुरारीलाल घाव पर नमक छिडकते हुए कहता है- "ओए काली, तेरी बहन मिल गई है। महीना-भर मौज-मैला और कमाई करने के बाद लौटी है।

आरती उतार, गले में हार डाल, बाजे-गाजे के साथ थाने से पालकी में बिठाकर ले आओ।" दलित समाज के पिछडेपन का मुख्य कारण अशिक्षा, अंधविश्वास और अज्ञान को माना जा सकता है। दलितों के बच्चों को शिक्षा से ज्यादा जानवर चराने और खेतों में काम करने में दिलचस्पी होती है। "पृतपाल हमारे बच्चे तो इस स्कूल में पढते नहीं। बाकी रहे अधर्मियों और मजहबियों के बच्चे, वे डंगर चराने, खेतों में काम करने और गलियों में डंडे बजाने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। तू स्कूल को गाँव में किसके लिए रखना चाहता है।" जगदीश चन्द्र जी ने दलितों में व्याप्त अंधविश्वासों, अस्वस्थ परंपराओं एवं रूढियों का यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। 'जमीन अपनी तो थी' उपन्यास में जगदीशचंद्र ने दलितों में व्याप्त अंधविश्वासों, अशिक्षा, आपसी जाति-भेद एवं असंगठन जैसी कमजोरियों का वास्तविक चित्रण किया है। जगदीशचंद्र जन्मत: दलित नहीं हैं, बल्कि अपने बचपन की त्रासद स्मृतियों से प्रेरित होकर दलितों की व्यथा-कथा को वाणी देने का प्रयास किया है। लेखक का मुख्य उद्देश्य समतामूलक और न्यायसंगत समाज रचना की स्थापना है। मानवीय-मूल्यों की स्थापना का वे प्रबल आग्रह करते हैं।

❑❑❑